International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)

बौद्ध दर्शन की समग्र चेतना और मानवता

डॉ0 राकेश कुमार गुप्ता
एसोशियेट प्रोफेसर एवं प्रभारी
दर्शनशास्त्र विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली।

Article Info
Volume 6, Issue 2
Page Number : 932-937

Publication Issue
March-April-2019

Article History
Accepted : 05 March 2019
Published : 20 March 2019

सारांश :– बौद्ध चिन्तन एक अत्यन्त सरल एवं सहज, सुबोध पन्थ है, जिसमें न तो कर्मकाण्ड की जटिलता है और न ही दार्शनिक दुर्बोधता। यह चिन्तन नैतिकता के आदर्श पर चलकर ऊपर उठा, किसी समय सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी साबित हुआ। इस चिन्तन के संस्थापक गौतम बुद्ध के उपदेश निर्विशेष मानवता की दुहाई देते प्रतीत होते हैं। ''भिक्षुओं बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोक अनुकम्पा के लिए विचरण करो। एक साथ दो लोग मत जाओ, ऐसा तथागत का वाक्य भिक्षुओं के लिए ब्रह्म वाक्य बन गया था।''[1] गौतम बुद्ध के काल की सम्पूर्ण बौद्ध चेतना मनुष्यों की समानता, स्वतन्त्र चिन्तन, स्वावलम्बन और आत्म निर्णय के मन्त्र से अनुप्राणित जान पड़ती है। उस समय बौद्ध चिन्तन शुद्ध विचार और पवित्र आचरण की पृष्ठभूमि में दुःखों के कारण और निवारण के अर्थ ढूँढ़ता मानवता का सच्चा पथ प्रदर्शक साबित हुआ था। गौतम बुद्ध स्वयं कभी गम्भीर दार्शनिक चिन्तन या वाद–विवाद से सम्बद्ध नहीं रहे और उसी का परिणाम यह हुआ कि भारत ही नहीं बल्कि विश्व के कई राष्ट्रों तक यह चिन्तन पनपने लगा लेकिन इस चिन्तन को स्वीकार करने वाले वर्ग विविध थे और गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद जो बयार चली, उसने इस चिन्तन में न केवल दार्शनिक दुरूहता बल्कि तन्त्र तक को प्रश्रय दे डाला। इसका परिणाम जो होना था, वही हुआ कि उन लोगों के लिए घर वापसी का रास्ता खुला, जो भावातिरेक में सरलता को सरल समझ बैठे थे। न्याय दर्शन इसी की परिणति था। प्रस्तुत लेख इन्हीं संभावनाओं और सत्यों के समझने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्द : नैतिकता, कर्म, बौद्ध सम्प्रदाय, निर्वाण और साधना, मानवता।

भूमिका :– जिस समय गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था, उस समय भारतीय जन–मानस व्यक्तिवादी आत्मशक्ति और व्यक्तिवादी निरर्थक तापसी साधनाओं के मध्य दोराहे पर खड़ा था। उस काल में कुछ लोग विशुद्ध भौतिकवादी सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे तो दूसरी और कठोर साधनाओं को दैवीय शक्तियाँ अर्जित करने का माध्यम माना जाता था। एक बड़ा वर्ग तत्वशास्त्र की समस्याओं को सुलझाने में विविधता के साथ निमग्न था। समाज में वैदिक वर्ण व्यवस्था अपनी सम्पूर्ण विकृति की हद तक पहुँच चुकी थी, लोगों का नैतिक जीवन लगभग निष्प्राण हो चुका था, ऐसे में बौद्ध चिन्तन ने मानव मात्र को नैतिकता और नैतिक समस्याओं के प्रति

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

जागरूक किया। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों में नैतिक सद्गुणों पर अधिक बल दिया। उन्होंने दया, करूणा, सत्य, अहिंसा, शुद्धता, आत्म संयम आदि सद्गुणों पर इतना अधिक बल दिया कि बौद्ध धर्म प्रारम्भ से ही मात्र नैतिक शुद्धता सदाचरण और मानवता का धर्म समझा जाने लगा। बहुत से विद्वानों की यह राय है कि बौद्ध धर्म मूलतः आचार दर्शन है, यह मूल्यों की शिक्षा देता है। गौतम बुद्ध दर्शनशास्त्र की ज्ञान मीमांसीय कठिनाईयों में नहीं उलझना चाहते थे, उनके अनुसार यदि किसी को विषैला तीर लगा हो तो उसका पहला काम उस तीर को निकालकर घाव का उपचार करना होना चाहिए न कि उस समय यह विचार करना उचित है कि तीर किसने चलाया, क्यों चलाया अथवा तीर किस धातु का बना हुआ है? वास्तव में गौतम बुद्ध तत्कालीन समाज को नैतिकता की मुख्य धारा से जोड़ना चाहते थे क्योंकि उस काल में मनुष्य के पास सबसे अधिक अभाव उसी का था। यही कारण था कि उनके द्वारा विशुद्ध दार्शनिक प्रश्नों पर मौन साध लिया गया और सद्मार्ग की दिशा में विश्व के अनेक धर्म गुरूओं के विपरीत अपने उपदेशों के सम्बन्ध में अपने शिष्यों की शंकाओं को न केवल सुना बल्कि उनका निराकरण भी किया। जिस सत्य ज्ञान की अनुभूति उन्हें हुई थी, उसे लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देशों को जन–जन तक पहुँचाने का संकल्प उन्होंने किया और घूम–घूमकर जन मानस को उपदेशित किया।

बौद्ध चिन्तन और उपनिषद :–

जहाँ तक बौद्ध धर्म की नैतिकता के चरम आदर्श का प्रश्न है तो इस सन्दर्भ में उनकी चिन्ता वेदों और उपनिषदों का समर्थन न करते हुए भी प्रकारान्तर से उपनिषदों के उसी केन्द्रीय विचार से प्रभावित जान पड़ती है जिसे उपनिषद् मोक्ष की अवधारणा कहते हैं। बौद्ध धर्म इस सत्य को निर्वाण नाम देता है। बौद्ध धर्म के अनुसार मनुष्य की परमगति 'निर्वाण' की प्राप्ति है। न केवल निर्वाण बल्कि वैदिक 'कर्मवाद' और 'पुनर्जन्म' की अवधारणा को भी बौद्ध धर्म स्वीकृति प्रदान करता है। हाँ यह जरूर है कि इन नैतिक अवधारणाओं के सम्बन्ध में गौतम बुद्ध का दृष्टिकोण किंचित भिन्न है क्योंकि उनके चिन्तन में न तो आत्मा के सनातन अस्तित्व की बात है और न ही ईश्वर की सत्ता की, उनके लिए निर्वाण सप्रयत्न है जिसे अतिभोग एवं अतिवैराग्य का त्याग कर मध्यम मार्ग से साधा जा सकता है। आचरण की शुद्धि एवं दुःखों से मुक्ति के लिए गौतम बुद्ध ने जिस मार्ग का अनुसरण करने की बात की थी, उसे अष्टांग मार्ग कहा जाता है, यही निर्वाण प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद गौतम बुद्ध के मुख से यह दिव्य वाक्य निकला था –

"अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पनं।।
गहकारक ! विट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गह कुढ़ विसंखितं।।"

अर्थात् बिना रूके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। इस काया रूपी गृह के बनाने वाले को खोजते पुनः–पुनः दुःख में पड़ता रहा। हे गृहकारक! मैंने तुझे देख लिया, अब तू घर नहीं बना सकता। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृह शिखर गिर गया, चित्त संस्कार रहित हो गया, अर्हतृ अर्थात् तृष्णाक्षय प्राप्त हो गया।

मूल बौद्ध चिन्तन और बौद्ध विभाग :–

यह गौतम बुद्ध का प्रथम वचन था, यहीं से बुद्ध शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और पैंतालीस वर्षों तक गौतम बुद्ध ने भारत के विभिन्न हिस्सों में पैदल चारिका करते हुए धर्मोपदेश दिया था और अस्सी वर्ष की अवस्था में कुशीनगर में उनका महापरिनिर्वाण हुआ। इस अवधि में उनके द्वारा स्थापित बौद्ध संघ में तनाव के कई अवसर आये लेकिन हर बार इस तरह की परिस्थिति से बच निकलने के समुचित उपाय कर लिये गये लेकिन उनके महापरिनिर्वाण के उपरान्त संघ में एकता न बनी रह सकी और अनेक बौद्ध निकायों का क्रमशः विकास होने लगा। इन विविध बौद्ध निकायों का विकास मुख्य रूप से दो धाराओं के केन्द्र में हो रहा था। ये धाराएँ थीं

स्थविरवादी और महासांघिक। स्थविरवाद, प्राचीन परम्परावादी और गौतमबुद्ध के मूलवचनों के अनुसार आचरण करने वाली धारा थी, जबकि महासांघिक विकासवादी और गौतमबुद्ध के करूणा, दया और प्रेम आदि गुणों से सम्पन्न ईश्वर के रूप में स्वीकार करने वाली लोक धार्मिकता के दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत एक अधिक लोकप्रिय धारा थी। इस धारा का प्रभाव यह हुआ कि गौतम बुद्ध का शास्ता, धर्मोपदेशक, मार्गोपदेशक और गुरू वाला रूप पूरी तरह बदल गया। महासांघिक निकायों में उनका त्राता, रक्षक, अवतार और भक्तिपरक रूप ही ज्यादा प्रचलित था। जहाँ स्वयं गौतम बुद्ध ने कर्मकाण्ड, पूजा पाठ आदि का निषेध किया था, यहाँ तक कि अपनी पूजा करने को भी भिक्षुओं से मना किया था, वहीं महासांघिक निकायों में नाना प्रकार के पूजा पाठ और कर्मकाण्ड प्रचलित थे। इन निकायों में केवल गौतम बुद्ध की ही नहीं बल्कि असंख्य बोधिसत्वों और सम्यक् सम्बुद्धों की गणना और पूजा होने लगी थी। (3) कहते हैं कि इन्हीं महासांघिक निकायों के आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित कुछ प्रमुख निकायों का सम्मिलित नाम महायान पड़ा। पुरातत्व निबन्धावली में इस सत्य का उद्घाटन किया गया है कि महासांघिक निकायों के अन्धक (आन्ध्र प्रदेश) उप निकायों के वैपुत्य, पूर्व शैलीय, अपरशैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थक के सम्मिलित स्वरूप का नाम ही महायान था।[4] '' भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण से लगभग 400 वर्षों के पश्चात् प्रथम शताब्दी ईस्वी में महायान की उत्पत्ति हुई थी।''[5]

स्थविरवादियों की तुलना में महायान काफी बाद का है लेकिन इस धारा का विकास इतनी तीव्र गति से हुआ कि उस समय अधिसंख्य जन महायान मत के अनुरूप बौद्ध धर्म के व्यवहार करने लगे थे और महायानियों द्वारा स्थविरवादियों को हीनयान अर्थात् संकीर्णयान की संज्ञा दी जाने लगी थी। महायान मत ने हीनयान मत को हमेशा ही लघु सिद्ध करने का प्रयत्न किया, यहाँ तक कि महायान परम्परा के एक ग्रन्थ में यह तक लिख दिया गया कि ''न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः।[6]

निर्वाण का मौलिक सन्देश :–

अन्य धर्मों की भाँति बौद्ध धर्म का भी विभाजन हुआ। इस विभाजन का मूल आधार परम्परावादी एवं प्रगतिवादी विचारधारा ही रही। इस विभाजन में गौतम बुद्ध के उपदेशों को कई अलग–अलग रूपों में पेश किया। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म की नैतिकता के चरम निर्वाण के सन्दर्भ में भी इन विविध मतों में पर्याप्त अन्तर देखा जा सकता है। हमारा उद्देश्य बौद्ध नैतिकता के इस चरम आदर्श के सन्दर्भों में इस विविधता को बारीकी से स्पष्ट करना है, इसके उपरान्त बौद्ध चिन्तन के सामान्य नैतिक सन्दर्भों पर विचार किया जाना समीचीन होगा।

पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि बौद्ध धर्म के मूलरूप से दो सम्प्रदाय हैं–स्थविरवाद अर्थात् हीनयान और महासांघिक अर्थात्– महायान। इस दोनों सम्प्रदायों में बौद्ध विमर्श के सन्दर्भ में पर्याप्त वैचारिक मतभेद है। इस सत्य को स्पष्ट किया जा चुका है। अतएव प्रस्तुत सन्दर्भ में 'निर्वाण' के सम्बन्ध में हीनयान और महायान के दृष्टिकोण से विचार किया जाना है।

निर्वाण और हीनयान सम्प्रदाय–

हीनयान बौद्धधर्म का प्राचीन और मौलिक सम्प्रदाय है। गौतम बुद्ध के मौलिक उपदेशों को कठोरता से पालन ही इस मत का मुख्य ध्येय है। यह मत उन तमाम सिद्धान्तों और मतों का समर्थन करता है, जिनका समर्थन स्वयं गौतम बुद्ध ने किया था। जैसे अनात्मवाद एवं क्षणिकवाद

का समर्थन इस मत में मिलता है। स्थविरवाद या हीनयान के सभी ग्रन्थ पालि भाषा में हैं। मूल पालि त्रिपिटक और पालि भाषा में त्रिपिटकों की टीका और अनुटीका ही इस मत की महती धरोहर है। 'तेपिटक संगहितं साट्ठकथं टीकानुटीका सहितं सब्बं थेरवादम्।'[7]

हीनयान मत में निर्वाण को 'अर्हत्' पद की प्राप्ति के रूप में देखा गया है। यही मनुष्य का परम लक्ष्य भी है। इस मत के अनुसार अर्हत् पद व्यक्ति को उसकी निजी साधना और विविध प्रयासों से प्राप्य है। यह बौद्ध धर्म का एक ऐसा मत है जो व्यक्तिगत शुद्धि, एकान्त जीवन और सन्यास पर बल देता है। इस मत का

विश्वास है कि सभी व्यक्ति बुद्ध तो नहीं बन सकते अतएव उनके बताये मार्ग पर चलकर अर्हत् पद प्राप्त कर सकते हैं। प्रश्न यह है कि अर्हत् पद है क्या? इस प्रश्न के उत्तर में डॉ. एस0 राधाकृष्णन् की व्याख्या समीचीन है। ''अर्हत् एक सामान्य शब्द है, जिसका व्यवहार बुद्ध से पूर्व के काल में भी ऐसे हर एक व्यक्ति के लिए होता था, जिसने अपने धर्म का आदर्श प्राप्त कर लिया हो।''[8]

हीनयान मत में अर्हत् पद एक ऐसी पवित्र अवस्था है जो आदर्श स्थिति में आनन्दपूर्ण है। यह एक उच्चतम अवस्था है, जिसमें वासनाएँ बुझ जाती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति कर्म और पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। संसार की वस्तुओं के प्रति तृष्णा और आसक्ति इस अवस्था में समाप्त हो जाती है।

अर्हत् शब्द की व्युत्पत्ति 'अर्ह' शब्द से हुई है। 'अर्ह' का अर्थ 'योग्य' या पूर्ण माना जाता है। ऐसा पूर्ण व्यक्ति अपने जीवन में निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है। यह पूर्णता, वस्तुतः प्रज्ञा के उदय की अवस्था है, जहाँ सभी संस्कार अनित्य और सभी दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता हैं। धम्मपद् में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है –

''सब्बे सङ्.खारा अनिच्च 'ति यदा पंच्चाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।''[9]
''सब्बे धम्मा अनत्ता 'ति यदा पच्चाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।''[10]

अर्थात् संसार में जो कुछ भी है, वह सब अनित्य है ऐसा प्रज्ञा से जब कोई देखता है तभी संसार दुःखों से विराग प्राप्त होता है। डॉ. एस0 राधाकृष्णन के अनुसार ''निर्वाण बौद्ध धर्म का लक्ष्य है और अर्हत् अवस्था वहाँ जाकर समाप्त हो जाती है।'' (11)

वस्तुतः अर्हत् पद या अवस्था अपने अन्तिम रूप में निर्वाण ही है। यहाँ पर बुद्ध और अर्हत् में एक अन्तर किया जा सकता है। वैसे तो इन दोनों अवस्थाओं में तादात्म्य है लेकिन अन्तर यह किया जा सकता है कि बुद्ध ने अपने प्रयास के प्रतिफल में निर्वाण की प्राप्ति की थी जबकि अर्हत् बुद्ध के 'धम्म' के प्रतिफल में निर्वाण की प्राप्ति करते हैं अर्थात् गौतम बुद्ध के बतलाये मार्ग पर चल अर्हत् निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

निर्वाण और महायान सम्प्रदाय–

हीनयान सम्प्रदाय में गौतम बुद्ध की जो मान्यता थी, वह एक शास्ता या गुरू अथवा एक उपदेशक की थी, जबकि महायान सम्प्रदाय में बुद्ध को करूणा, दया और प्रेम के गुणों से सम्पन्न ईश्वर के रूप में स्वीकार किया गया है। गौतम बुद्ध के अनेक सिद्धान्तों की नूतन व्याख्याएँ इस मत में स्वीकार्य हैं जैसे महायान अनात्मवाद के विपरीत आत्मवाद की धारणा में विश्वास करने वाला मत है। यही नहीं बल्कि महायान संसार से वैराग्य की शिक्षा नहीं देता है अर्थात् महायान संसार के सन्दर्भ में पलायनवादी नहीं है। जहाँ तक 'निर्वाण' का प्रश्न है तो महायान सम्प्रदाय में 'बोधिसत्व' की कल्पना की गयी है और यही जीवन का उद्देश्य भी माना गया है। 'बोधिसत्व' व्यक्ति की वह अवस्था है जो केवल अपने निर्वाण की नहीं बल्कि मानव जाति के उद्धार की भावना से प्रेरित व्यक्तिगत निर्वाण की नहीं बल्कि लोक कल्याण पर आधारित स्थिति प्राप्त करना चाहता है।

हीनयानियों के लिए अर्हत् का आदर्श बड़ा ही महत्वपूर्ण है लेकिन महायानियों के लिए यह आदर्श सन्तोषप्रद नहीं है। उनका तर्क है कि गौतम बुद्ध के अनसार निर्वाण प्राप्त करने वाला व्यक्ति संसार की ओर से अपनी आँख बन्द नहीं कर लेता है बल्कि निर्वाण प्राप्त व्यक्ति संसार को ऐसा प्रकाश देता है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक पहुँच सके।

डॉ.एस0 राधाकृष्णन् के अनुसार–''महायान के बोधिसत्व का वर्णन उपनिषदों में प्रतिपादित प्रबुद्ध, ईसाई–धर्म में वर्णित मनुष्य मात्र के मुक्तिदाता ईसा मसीह एवं नीत्से के अति मानव के वर्णन के अनुकूल है

क्योंकि वह ऐसे संसार की सहायता करता है जो अपने लक्ष्य को स्वयं बिना किसी सहायता के प्राप्त नहीं कर सकता।''[12]

वस्तुतः बौद्ध दर्शन के दोनों प्रमुख सम्प्रदायों–हीनयान और महायान में नैतिक आदर्श को लेकर पर्याप्त मतभेद है। महायान सम्प्रदाय का नैतिक आदर्श 'बोधिसत्व' हीनयान के नैतिक आदर्श 'अर्हत्' से बिल्कुल भिन्न है। हीनयान के 'अर्हत्' का लक्ष्य पहले स्वयं की मुक्ति है किन्तु महायान के नैतिक आदर्श 'बोधिसत्व' का लक्ष्य सर्वमुक्ति है, जो वस्तुतः लोक कल्याण की भावना पर आधारित है। महायानियों के अनुसार ''जो लोक में बल प्राप्त वशीभूत है, वे यदि दूसरे के चित्त का निग्रह नहीं कर सकते हैं तो उनकी बल प्राप्ति क्या है? वशीभूत क्या है? वे बल–प्राप्ति और वशीभूत से अवश्य ही दूसरे के चित्त का निग्रह करते हैं।''[13]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि महायान सम्प्रदाय के 'बोधिसत्व' का आदर्श, हीनयान के आदर्श 'अर्हत्' से अधिक लोकोपयोगी और सर्वकल्याण का साक्षी है। महायान में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दस श्रेणियों का विधान किया गया है– प्रमुदिता, विमलता, प्रभाकारी, अर्चिष्मती, सुदुर्जय, अभिमुखी, दरंगमा, अचला, साधुमती और धर्ममेघ आदि। महायानिक परम्परा के बौद्ध ग्रन्थों में इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। धर्ममेध की भूमि में बोधिसत्व, तथागत अर्थात् सर्वकल्याण का प्रतीक बन जाता है।

निष्कर्ष :–बौद्ध धर्म के इन निकायों से थोड़ा हटकर यदि गौतम बुद्ध के मूल उपदेशों पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य चेतना के सर्वश्रेष्ठ स्तर पर बौद्ध धर्म ठहरता है। गौतम बुद्ध ने जिन चार आर्य सत्यों का प्रवचन किया था, वे अपने आप में नैतिकता की चरम कसौटी है। महा परिनिब्बान सुत्त में आर्य सत्यों की उपयोगिता का स्पष्ट वर्णन है–''भिक्षुओं, चार आर्य सत्यों को नहीं जानने के कारण मेरा तथा तुम्हारा चिरकाल तक संसार में घूमना लगा रहा। हम लोग चार आर्य सत्यों को ठीक से नहीं देखने के ही कारण आज तक चक्कर काटते फिरे, किन्तु अब उसे हम लोगों ने देख लिया अब तृष्णा नष्ट हो गयी। दुःख का मूल कट गया। फिर जन्म लेना नहीं है।'' (14) गौतम बुद्ध द्वारा प्रवचित यह चार आर्य सत्य हैं :–

1. दुःख आर्य सत्य,
2. दुःख समुदय आर्य सत्य
3. दुःख निरोध आर्य सत्य
4. दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद आर्य सत्य

दुःख वास्तविक सत्य है, दुःख का समुदय अर्थात् उत्पत्ति भी सत्य है। दुःख का निरोध अर्थात् दुःख का नष्ट हो जाना, तृतीय आर्य सत्य की भाव–भूमि है, चतुर्थ आर्य सत्य में गौतम बुद्ध ने दुःख निरोध के मार्ग की चर्चा की है, यह विशुद्धि का मार्ग है जिसे वे मज्झिमा पटिपदा अर्थात् मध्य मार्ग कहते थे जिसके आठ अंग हैं। ये आठों अंग प्रज्ञा, शील और समाधि के विभाग हैं–(1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् कर्मान्त, (4) सम्यक् आजीविका, (5) सम्यक् समाधि, (6) सम्यक् व्यायाम (7) सम्यक् स्मृति, (8) सम्यक् समाधि।

इन आठों अंगों में सम्यक् शब्द कुशल और अकुशल को पहचानने का प्रतीक है, जिसे सच्ची धारणा भी कहा जाता है, अपने अन्तिम रूप में यही परम सुख है और यही चरम मूल्य। बौद्ध धर्म की यह विशेषता है कि वह अनित्य, दुःख और अनात्म को मानते हुए भी आत्मा परमात्मा को नहीं मानता लेकिन जीवन की सततता में विश्वास करते हुए कर्म विपाक की धारणा में पूर्ण विश्वास करता है। गौतम बुद्ध के अनुसार कर्म और उसका विपाक अर्थात् फल ये दो ही विद्यमान हैं और इनकी विद्यमानता व्यक्ति के पुनर्जन्म का कारण है–

कम्पा विपाका वत्तन्ति, विपाकों कम्प सम्भवो।
कम्पा पुनब्भवो होति एवं लोको पतत्तति।।[15]

गौतम बुद्ध के अनुसार कर्म के ही कारण प्राणियों में विभिन्न भेद वर्तमान है, जब कर्म का विपाक रूक जाता है तो फिर पुनर्जन्म नहीं होता।

बौद्ध धर्म में कर्म का यह मन्तव्य जनमानस में मूल्य चेतना का कारण ही नहीं बल्कि परिणाम भी है। अच्छे–बुरे कर्म के कारण ही व्यक्ति अच्छा और बुरा होता है। गौतम बुद्ध के अनुसार कर्म से ही व्यक्ति ऊँच और नीच होता है, कर्म ही व्यक्ति को ब्राह्मण बनाता है और कर्म ही वसल अर्थात् निम्न। कर्म और पुनर्जन्म का यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि निर्वाण का साक्षात्कार न हो जाये और निर्वाण के साक्षात्कार में विशुद्धि अर्थात् जीवन के सभी स्तरों पर पवित्रता का अभ्यास ही बौद्ध धर्म का मूल मन्त्र है।

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ :–

1. प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास–विमल चन्द पाण्डेय, पृ0–327
2. धम्मपद, 11, 8, 9
3. भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास–श्री राम नारायण श्रीवास्तव, पृ0–137
4. पुरातत्व निबन्धावली, पृ0 103,
5. भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास, श्री राम नारायण श्रीवास्तव, पृ0–137
6. सन्दर्भ पुण्डरीकसूत्रम, पृ0 31
7. भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास, पृ0 141
8. भारतीय दर्शन भाग–1 डॉ. एस. राधाकृष्णन, पृ0–348
9. धम्मपद–गाथा संख्या 277
10. धम्मपद–गाथा संख्या–279
11. डॉ0 एस0 राधाकृष्णन् भाग–1, भा0 दर्शन पृ0 348
12. डॉ. राधाकृष्णन्–भारतीय दर्शन पृ0–494
13. कथावस्तु 4, 6, 1
14. महापरिनिव्वानसुत्तं, पृ0 44–45
15. विशुद्धिमार्ग, भाग–2 पृ0 205
16. बुद्धिष्ट फिलॉसफी इन इण्डिया–ए0वी0, कीथ, वाराणसी, 1963
17. बुद्धिष्ट सेक्ट्स इन इण्डिया–डॉ. नलिनाथ दत्त, कलकत्ता, 1970
18. ओरिजिन्स ऑफ बुद्धधिज्म, रेप्सन, किमूरा, कलकत्ता, 1920
19. अंगुत्तर निकाय–नव नालन्दा महाविहार प्रकाशन, नालन्दा, 1961
20. दीर्घ निकाय–नव नालन्दा महाविहार प्रकाशन, नालन्दा, 1961
21. बौद्ध धर्म मूल सिद्धान्त–भिक्षु धर्म रक्षित ममता प्रेस, वाराणसी, 1958
22. अशोक के अभिलेख–डॉ. राजबली पाण्डेय ज्ञान मण्डल लि0 कबीर चौरा, वाराणसी सं0–2022
23. निर्णय सिन्धू–कमलाकर भट्ट, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं0–1955
24. धम्मपद, सारनाथ वाराणसी, 1953 भिक्षु धर्म रक्षित द्वारा सम्पादित
25. भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास–श्रीराम नारायण श्रीवास्तव, किशोर विद्या निकेतन प्रकाशन, भदौनी, वाराणसी।
26. पुरातत्व निबन्धावली, राहुल सांकृत्यायन